© 2017 IJSRSET | Volume 3 | Issue 6 | Print ISSN: 2395-1990 | Online ISSN : 2394-4099
Themed Section: Engineering and Technology

ज्योतिषीय दृष्टि में प्रयाग : एक विमर्श

राजेश कुमार

शोधच्छात्र, संस्कृत विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

ज्योतिष शास्त्र की व्युत्पत्ति– द्युत् दीप्तौ धातु से इसिन् प्रत्यय ''द्युतेरिसिन्नादेश्च जः'' से दुकार को जकार आदेश तथा पुगन्तलघुपधस्य सूत्र से गुणादेश होकर ज्योतिष शब्द निष्पन्न होता है। ज्योतिष शब्द तीन रूपों में बनता है– ज्योतिष, हलन्त प्रयोग जिसका अर्थ प्रकाश, प्रभा, चमक अथवा दीप्ति है। दूसरा प्रयोग ज्योतिष शब्द से 'अर्शआदिभ्यो अच्' सूत्र से अच् प्रत्यय करने पर ज्योतिष अकारान्त शब्द बनता है जिसका अर्थ आकाशीय पिण्डों से है। तीसरा प्रयोग ज्योतिष शब्द से अण् प्रत्यय के विधान से ज्यौतिष शब्द निष्पन्न होता है जिसका अर्थ ज्योतिष सम्बन्धी विद्या, गणित फलित तथा संहिता सम्बन्धी विषयों का वर्णन। इस प्रकार तीन रूपों में ज्योतिष शब्द का प्रयोग प्रचलित है कतिपय आचार्य ज्योतिष शास्त्र की व्युत्पत्ति ''ज्योतिषां सूर्यादिग्रहाणां बोधकं शास्त्रम् करते हैं। अर्थात् सूर्यादि ग्रहों के बोधक शास्त्र को ज्योतिष शास्त्र की संज्ञा प्रदान की गयी है। ऋषि लगध ने ज्योतिष शास्त्र को कालविधान शास्त्र कहा है। तस्माद् इदं कालविधानशास्त्रम्। शास्त्र शब्द की व्युत्पत्ति दो प्रकार से की जाती है। 1. शासनात् शास्त्रम् अर्थात् जो आज्ञा दे यह करो यह मत करो वह शास्त्र है। 2. शास्त्रत्वं शंसनादपि। अर्थात् एक उद्देश्य विशेष से जो सम्पूर्ण अर्थों का ज्ञान करा दे वह है शास्त्र। दोनों व्युत्पत्तियों के आधार पर यह कह सकते हैं कि जो किसी वस्तु के स्वरूप को ठीक–ठीक समझा दे अर्थात् जो सत्य का ज्ञान करा दे उसे शास्त्र कहते हैं। अतएव ज्योतिष शास्त्र का अर्थ है– ग्रह नक्षत्रादि प्रकाश पिण्डों के माध्यम से सत्य का ज्ञान तथा विधि निषेध, कर्त्तव्याकर्त्तव्य, हेयोपादेय, पुण्यापुण्य सद्सद् कार्यों में मानवों की प्रवृत्ति एवं निवृत्ति।

वैदिक यज्ञों के शुभ मुहूर्त निर्धारण के लिये ज्योतिष नामक वेदांग की आवश्यकता हुई। षड् वेदाङ्गों में ज्योतिष को वेद का नेत्र कहा गया है। वेदांग ज्योतिष में इसका महत्व बताया गया है कि यह शास्त्र यज्ञों का काल–विधान बताता है।[1]

मुण्डकोपनिषद् तथा पाणिनीय शिक्षा में परा तथा अपरा नामक दो विद्याओं का उल्लेख प्राप्त होता है।

द्वे विद्ये वेदितव्ये परा चैवापरा च।

अपरा विद्या के अन्तर्गत ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्दस् तथा ज्योतिषशास्त्र आते हैं।

> छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते।
> ज्योतिषामयनं चक्षुर्निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते।।
> शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम्।
> तस्मात् साङ्गमधीत्यैव ब्रह्मलोके महीयते।।इति।।

इसका तात्पर्य यह है कि सम्पूर्ण विद्याओं का ज्ञाता पुरुष यदि ज्योतिष विद्या से अनभिज्ञ है तो वह सावयव सम्पन्न सुन्दर अन्धव्यक्ति के सदृश है। अतएव ज्योतिष शास्त्र का ज्ञान प्रत्येक व्यक्ति का निष्कारण धर्म है। केवल भविष्य ज्ञान हेतु ही नहीं अपितु वैदिक ज्ञान की रक्षा हेतु षडङ्गों सहित वेद का अध्ययन, मनन अनिवार्य कर्तव्य है। ज्योतिष लौकिक, पारलौकिक, प्रत्यक्ष, अप्रत्यक्ष सभी को प्रत्यक्ष करने वाला शास्त्र है। कहा भी गया है कि अन्य सभी शास्त्र अप्रत्यक्ष हैं तथा उनमें विवाद भी हैं किन्तु ज्योतिष शास्त्र प्रत्यक्ष शास्त्र है।[2]

प्रयाग शब्द की व्युत्पत्ति भिन्न–भिन्न स्थानों पर भिन्न–भिन्न रूपों में की गयी है। जिनमें से प्रमुखः निम्नवत् है

प्रथम अंश स्कन्दपुराण में भी आया है। अतः प्रयाग का अर्थ है 'यागेभ्यः प्रकृष्टः' 'यज्ञों में बढ़कर जो है' या प्रकृष्टाः यागाः यत्र' जहाँ उत्कृष्ट यज्ञ है। इसलिए कहा जाता है कि यह सभी यज्ञों से उत्तम है, हरि, हर आदि देवों ने इसे प्रयाग नाम दिया है।

महाभारत के वनपर्व, मत्स्यपुराण आदि ने प्रयाग–क्षेत्र की परिभाषा दी है कि प्रयाग का विस्तार प्रतिष्ठान से वासुकि के जलाशय तक है और कम्बल नाग एवम् अवश्वतर नाम तथा बहुमूलक तक है। यह तीन लोकों में प्रजापति के पवित्र स्थल के रूप में विख्यात है।[3]

सम्पूर्ण पृथ्वी में 'प्रयाग' नाम से प्रसिद्धि मात्र तीर्थराज को ही मिली है। तीर्थराज इसकी उपाधि है, शब्दवाच्य केवल गंगा और यमुना के संगम पर बसा हुआ क्षेत्र ही है, अर्थात् प्रयाग है। जिसका वर्णन,

गुणगान एवं माहात्म्य संस्कृत वाङ्मय में अनेक स्थानों में देव, महर्षियों आदि के द्वारा किया गया है। 'प्रयाग' शब्द का निर्वचन है।[4] 'प्रकृष्टो यागो यत्र'। इसके अन्यत्र, जो प्रयाग शब्द से अभिहित किये गये हैं, वे किसी न किसी देवतादि के नाम से प्रसिद्ध हैं। जैसे– रूद्रप्रयाग, कर्णप्रयाग, देवप्रयाग आदि। इनकी संख्या भारतवर्ष में प्रयागातिरिक्त तेरह मानी गयी है। यह सभी भी प्रयाग की तरह ही किसी न किसी नदी के संगम से ही निर्मित हैं।

तीर्थराज प्रयाग में मकर संक्रांति का ज्योतिषीय एवं आध्यात्मिक महत्त्व :

मकर संक्रान्ति किसे कहते हैं ? इसका भौगोलिक, सांस्कृतिक, आध्यात्मिक महत्त्व प्रयागवासियों के लिये क्या है, इत्यादि प्रश्नों का समाधान ज्योतिषशास्त्र के सिद्धान्त ग्रन्थों में विस्तार से प्राप्त होता है। सृष्टि के आरम्भ में परम पुरुष नारायण अपनी योगमाया से प्रकृति में प्रवेश कर सर्वप्रथम जलमयी सृष्टि में कारणवारि का आधान करते हैं। जिसे वेदों ने हिरण्यगर्भ कहा है। सर्वप्रथम होने के कारण इसे आदित्य तथा इन्हीं आदित्य से चराचर जीवों की उत्पत्ति होने के कारण इसे सूर्य कहा गया है।

ज्योतिषशास्त्र के अनुसार जब वर्तमान राशि का त्याग करके सूर्य अगली राशि में प्रवेश करते हैं तो उसी काल को संक्रान्ति कहते हैं। अतएव संक्रान्ति प्रत्येक मास होती है। राशियां कुल बारह हैं, अतः सूर्य की संक्रान्ति भी बारह होती हैं। इन संक्रान्तियों को ऋषियों ने चार भागों में विभक्त किया है– 1. अयनी संक्रान्ति, 2. विषुवी संक्रान्ति, 3. षडशीतिमुखी संक्रान्ति, 4. विष्णुपदी संक्रान्ति।

अब प्रश्न यह उठता है कि संक्रान्तियां तो बारह होती हैं फिर मकर संक्रान्ति को ही इतना महत्व क्यों दिया जाता है ? इसका कारण यह है कि भारतवर्ष में प्राचीन काल से वर्षारम्भ का दिन मकर संक्रान्ति से ही माना गया था। वर्षारम्भ के साथ ही हजारों वर्ष की पुरानी भारतीय संस्कृति का इतिहास भी इस मकर संक्रान्ति से जुड़ा हुआ है। वैदिक काल में जब राशियां अज्ञात थीं, दिनों के नाम भी नहीं रखे गये थे, दिनों के सम्बन्ध में निश्चित किये जाने वाले वर्ष के राजा और मंत्री भी नहीं होते थे, उस समय हमारे ऋषियों, महर्षियों ने नक्षत्रों से ही ग्रहों के शुभाशुभ फलों की गणना की थी। उन दिनों भारतीयों के सम्पूर्ण व्यवहार तिथियों पर ही आश्रित थे। आज हम जिसे मकर संक्रान्ति कहते हैं, उस समय उसे युग या वर्ष का आदि कहा जाता था। आज से लगभग पैंतीस सौ वर्ष पूर्व वेदांग ज्योतिष में महर्षि

लगध ने कहा है कि जब चन्द्रमा और सूर्य आकाश में एक साथ धनिष्ठा नक्षत्र पर होते हैं तब युग या संवत्सर का आदि माघमास तथा उत्तरायण का आरम्भ होता है।

प्रयाग में श्राद्ध कर्म ज्योतिषीय विवेचन :

भारतीय संस्कृति में श्राद्ध प्रक्रिया का विशेष महत्त्व है। श्राद्ध की परिभाषा करते हुए कहा गया है कि जिस क्रिया से सत्य धारण किया जाता है उसे श्रद्धा कहते हैं ''सत् सत्यं दधाति यया क्रियया सा श्रद्धा'' तथा जो श्रद्धापूर्वक पितरों के निमित्त से दिया या किया जाता है उसे श्राद्ध कहते हैं।

मानवीय कालगणना के अनुसार जब मनुष्य के एक वर्षपूर्ण होते हैं तब देवताओं एवं दैत्यों का एक अहोरात्र होता है। उत्तरायण को देवताओं का दिन तथा दैत्यों की एक रात्रि कहा गया है ''देवानां च दिनं दैत्यानां च रात्रिः'' जबकि मनुष्यों के एक चान्द्रमास के पूर्ण होने पर पितरों की एक (अहोरात्र) दिन रात्रि होती है। दिन कहते हैं जब तक सूर्य दिखायी देता रहे और जब सूर्य दिखायी न दे तब रात्रि होती है। चन्द्रमण्डल के उर्ध्व में रहने वाले पितरों के लिये एक पक्ष अर्थात् 15 दिन पर्यन्त सूर्य का दर्शन होता रहता है और 15 दिन सूर्य अदृश्य रहता है। अमावस्या को चन्द्रमा ठीक सूर्य के सामने रहता है इसीलिये अमावस्या पितरों का मध्याह्न काल है। इसलिये इस दिन श्राद्ध (पिण्डदान, र्पिण आदि) आवश्यक माना गया है। समस्त सृष्टि में दो ही तत्त्व प्रमुख रूप से कार्य कर रहे हैं। अग्नि तत्त्व एवं सोमतत्त्व।

संदर्भ :

1. वेदा हि यज्ञार्थमभिप्रवत्ताः कालानि पूर्वा विहिताश्व यज्ञाः।
   तस्मादिदं कालविधानशास्त्रं, यो ज्योतिषं वेद स वेद यज्ञम्।।
   वेदांग, ज्योतिष श्लोक–3
2. अप्रत्यक्षाणि शास्त्राणि विवादस्तत्र केवलम्।
   प्रत्यक्षं ज्योतिषं शास्त्रं चन्द्रसूर्यो हि साक्षिणौ।।इति।।
3. मत्स्य पुराण, 104.5
4. मत्स्य पुराण, 109.15